प्रवचन नं. २३१, गाथा १५०, श्लोक १०३-१०४ दिनाङ्क २०-०५-१९७९, रविवार
बैशाख कृष्ण ९

(श्री समयसार) गाथा १५० है ? व्रत, नियम, शील, तप, इत्यादि शुभकर्म, ऐसा। वह जड़कर्म, ऐसा नहीं। ऐसे शुभभाव जो हैं, उन्हें यहाँ शुभकर्म कहा गया है। व्रत के, तप के, नियम के, शील के ये भाव हैं, शुभभाव हैं, उन्हें भी यहाँ कर्मरूप से कहा गया है। यद्यपि एक जगह ऐसा कहा है कि इनकी जो क्रियाएँ हैं, वे कर्म हैं और इनका जो भाव है, वह शुभ उपयोग है। कलश-टीका में ऐसा कहा है, परन्तु उसका अर्थ वह का वही है।

१५०, (गाथा) **दोनों कर्म..** दोनों कर्म अर्थात् ये। व्रत, नियम, शील, तप, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयवासना- दोनों भाव, कर्म कहे जाते हैं और वे आत्मा नहीं है, आत्मा की जाति नहीं है। आहाहा! **दोनों कर्म बन्ध के कारण हैं..** व्रत, नियम, तप, शील - यह सब शुभभाव, बन्ध का कारण है। आहा! **और निषेध्य हैं:-** वापस ऐसा आया है। बन्ध का कारण है और निषेधने योग्य है। इनसे आत्मा को लाभ हो, यह बात तो नहीं, परन्तु निषेधने योग्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : नुकसानकारक कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नुकसान है। आगे कलश में आयेगा। अन्दर एक कलश है न ? ऐसा कि, घात का कारण नहीं परन्तु ऐसा है। आता है न एक (कलश में) ? १०८ कलश। **कर्म मोक्ष के कारणों का तिरोधान करनेवाला है, और वह स्वयं ही बन्धस्वरूप है तथा मोक्ष के कारणों का तिरोधायिभावस्वरूप (तिरोधानकर्ता) है...** वह अलग। एक छोटा कलश है। याद आवे तो आवे न! क्या कहा यह ? यह तो कलश में है। घात करनेवाला है, निषेधनेयोग्य नहीं है, घात करनेवाला है, ऐसा है। तिरोघाई वह तो है। यह तो कलश में एक शब्द है।

(१६१-१६३ गाथा का भावार्थ) **पहले तीन गाथाओं में कहा था कि कर्म मोक्ष के कारणरूप भावों का-सम्यक्त्वादि का घातक है। बाद की एक गाथा में यह कहा है कि कर्म स्वयं ही बन्धस्वरूप है। और इन अन्तिम तीन गाथाओं में कहा है कि कर्म मोक्ष के कारणरूप भावों से विरोधी भावस्वरूप है..** यह है, परन्तु

एक कलश में कहीं है। एक कलश में कहीं एकदम (लिखा है)। वह कहीं आ गया होगा। आवे तब सही!

यहाँ तो कहना है कि दोनों बन्ध के कारण हैं और निषेध करनेयोग्य है। **आगम से यह सिद्ध करते हैं..** आगम अर्थात् वीतराग की वाणी। जिनेश्वरदेव की आगम की वाणी में ऐसा है – यह कहते हैं। तीन प्रकार कहे – बन्ध के कारण हैं; निषेध करनेयोग्य है; ऐसी आगम की वाणी है। सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यध्वनि जो आगम, उसका प्रमाण है। १५० (गाथा)

रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज।।१५०।।

नीचे हरिगीत

जीव रागी बांधे कर्म को, वैराग्यगत मुक्ती लहे।
–ये जिनप्रभू उपदेश है नहिं रक्त हो तू कर्म से।।१५०।।

इसकी टीका – **रक्त अर्थात् रागी अवश्य कर्म बाँधता है,...** आहाहा! चाहे तो वह शुभराग हो या अशुभराग हो। दया, दान, व्रत, तप का भाव हो; हिंसा, झूठ, विषय का भाव हो, दोनों रागी हैं, दोनों राग है और रागी अवश्य कर्म बाँधता है। आहाहा! वैराग्य प्राप्त – वैरागी अर्थात् शुभ-अशुभभाव से छूटना, इसका नाम वैराग्य है। वैराग्य (अर्थात्) यह स्त्री-पुत्र छोड़े और दुकान छोड़ी; इसलिए वैरागी है – ऐसा नहीं है। आहाहा! वैराग्य उसे कहते हैं कि जो पुण्य और पाप, शुभ-अशुभभाव -राग से विरक्त है, उसे वैराग्य कहते हैं। आहाहा! बाहर से कोई कुटुम्ब-कबीला छोड़कर, दुकान छोड़कर बैठा, (इसलिए) वैरागी है – ऐसा नहीं है। आहाहा!

यह तो निर्जरा अधिकार में आया है न! ज्ञान-वैराग्य शक्ति। अस्तिरूप से जो भगवान पूर्णानन्द है, उसके अस्तित्व का, सत्ता का, भूतार्थ का, ज्ञायक का जो श्रद्धा और ज्ञानभाव (होना), वह ज्ञान; और पुण्य तथा पाप, शुभाशुभभाव से विरक्त, वह वैराग्य। ज्ञान और वैराग्य दो शक्तियाँ सम्यक्त्वी को हमेशा होती है, ऐसा वहाँ लिया है। वस्तुस्वरूप जो पूर्णानन्द प्रभु, आहाहा! पूर्ण शुद्ध चैतन्य ज्ञायक, अनन्त अतीन्द्रिय गुणमणि रत्न की खान,

आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका ज्ञान, (वह ज्ञान) और शुभ-अशुभभाव से वैराग्य, उस राग से रहित वह वैराग्य। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, **रागी अवश्य कर्म बाँधता है, और विरक्त अर्थात् विरागी ही कर्म से छूटता है.. विरागी ही..** (कहा है)। इन शुभ-अशुभभाव से जिसे छूटना है, वैराग्य है; वह वैरागी कर्म से छूटता है। रागी पुण्य, दया, दान, व्रत के परिणामवाला छूटता है और छूटने में सहायक है - ऐसा नहीं है। आहाहा! विरक्त-वैरागी ही कर्म से छूटता है। जो पुण्य-पाप में रक्त है, वह बँधता है और जो शुभ-अशुभभाव से विरक्त है, (वह छूटता है)। रक्त है, वह बँधता है; विरक्त है, वह छूटता है। विरक्त अर्थात् वहाँ से छूटा-निवृत्त हुआ है। आहाहा! बाहर की निवृत्ति ली, इसलिए वह वैरागी है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अन्दर के शुभ और अशुभभाव से जो विरक्त अर्थात् वैराग्य है... आहाहा! वही कर्म से छूटता है।

ऐसा जो यह आगमवचन है.. देखो! मूल पाठ में **जिणोवदेसो** है न! जिन का (जिनवर का) यह उपदेश है। भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरों जिनवरों का यह उपदेश है। यह उपदेश है, वह आगम वचन है, क्योंकि 'ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे' और उसमें से आगम रचते हैं। वह आगम, जिनवाणी है। आहा! जिनवाणी में अर्थात् आगम में पुण्य-पाप से छूटना, ऐसा वचन है। शुभाशुभभाव से कुछ लाभ हो, ऐसा वचन वीतराग के उपदेश में- वाणी में नहीं है। आहाहा! हीरालालजी! ऐसा है।

रागी बँधता है और वैरागी छूटता है - ये दो शब्द हुए। चाहे तो पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव (हों), वह बन्धन को पाता है और उन शुभाशुभभावों से विरक्त, (वह) वैरागी है, वह कर्म से छूटता है। आहाहा! ऐसा तो कहा न! व्रत, नियम, शील, तप चारों शुभकर्म हैं, शुभराग है। वह शुभकर्म है। आहाहा! उससे वैराग्य प्राप्त करे, उससे विरक्त हो और आत्मा के स्वभाव में रक्त हो। आत्मा आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव में रक्त हो और पुण्य-पाप से विरक्त हो। आहाहा! वह कर्म से छूटता है। आहाहा! यह कठिन पड़ता है। किसी जगह वापस ऐसा कथन होवे न (कि) व्यवहार है, वह साधन है; परन्तु वह तो निमित्त का ज्ञान कराया। भाई! साधन तो यह है।

रात्रि को जरा कहा था, नहीं? अन्तरात्मा, वह परमात्मा का साधन है। बहिरात्मा,

उन पुण्य और पाप को अपना माननेवाला बहिर्-जो वस्तु में नहीं। चिदानन्द प्रभु, ज्ञानघन प्रभु में पुण्य और पाप के भाव नहीं है। आहाहा! ये पुण्य और पाप उसमें नहीं है। आहा! उसमें जो रक्त है, वह बन्धन को पाता है। उससे अन्तरात्मा भिन्न पड़ता है। पहला बहिरात्मा हुआ। शुभराग में भी स्वयं रक्त है, वह बहिर् है। बहिर्, वस्तु में नहीं है, उसमें वह रक्त है; इसलिए वह बहिरात्मा है। आहाहा! और जो वस्तु में नहीं है, वैसे राग में रक्त नहीं और वस्तु के अस्तित्व की श्रद्धापूर्वक शुभ-अशुभभाव से जो विरक्त है और स्वरूप में रक्त है, वह कर्म से छूटता है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है।

यहाँ पन्द्रह दिन के अपवास करे और महीने के अपवास करे, वहाँ बड़ी शोभायात्रा निकाले, मानों इसने क्या किया! भाई! परन्तु (वह) बन्ध का कारण है। शुभराग और उसमें फिर यदि धर्म माने तो मिथ्यात्व का पोषण है। जिस मिथ्यात्व में अनन्त भव करने की ताकत है। आहाहा! ऐसे भाव में धर्म माननेवाला मिथ्या अर्थात् सत्य से विपरीत है। सत्य ऐसा प्रभु, जो रागरहित है—ऐसा सत्य प्रभु, उसकी दृष्टि और उसमें रक्तता (होना) तथा शुभ-अशुभभाव से विरक्तता (होना), वह अन्तरात्मा है। वह अन्तरात्मा, परमात्मा का साधन करता है। राग, परमात्मा का साधन है - ऐसा नहीं है। मोक्षमार्ग में आता है न! अन्तरात्मा होकर परमात्मा को साधे। आहाहा!

इसलिए शुभ-अशुभराग... बहुत कठिन काम, बापू! आहाहा! दोनों को एक जाति कही और आगम का वचन है - ऐसा कहा। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने ऐसा कहा कि **जिणोवदेसो..** (अर्थात् कि) जिन का यह उपदेश-वाणी है। आहा! टीकाकार कहते हैं कि यह आगमवचन है, हों! भगवान का ावचन है न, प्रभु! आहाहा! क्योंकि प्रभु वीतराग है। वे वीतराग होने का उपदेश देते हैं। तो उस वीतराग होने के उपदेश में आगम का वचन यह आया कि राग से विरक्त हो। राग में राचना, वह बन्धन और अज्ञान है। आहाहा! राग में राचना छोड़कर भगवान में राच और राग से विरक्त हो। उसे कर्म से छूटे - ऐसा आगम का वचन है। सिद्धान्त का यह वचन है। चारों ओर खोजकर ढूँढ़ तो यह वचन-सिद्धान्त है-ऐसा कहते हैं। आहाहा! चारों अनुयोगों में से खोज तो वचन तो यह है। आहाहा! कि, अमुक अनुयोग में ऐसा कहा है कि इस कर्म से लाभ होता है.. आहा! तो यहाँ कहते हैं कि वह आगमवचन नहीं है। आहाहा!

जो यह आगमवचन है, सो.. अर्थात्? कि राग से विरक्त हो, अर्थात्? **सामान्यतया रागीपन की निषेधता के कारण..** इसमें कुछ ऐसा नहीं आया कि अशुभ का निषेध और शुभ का आदर (करना)। **सामान्यतया रागीपन की निमित्तता के कारण..** संक्षेप में शुभ और अशुभ दोनों के भाव आये। आहाहा!

मुमुक्षु : चरणानुयोग में भी यह है?

पूज्य गुरुदेवश्री : चारों अनुयोगों में सर्वत्र वीतरागता कही है। व्यवहार से उपदेश दिया है (कि) ऐसा करना, ऐसा करे। भावपाहुड़ में भी बहुत कहा है न! भावपाहुड़ में तो बहुत कहा है। वह सोलहकारणभावना से तीर्थंकरगोत्र बाँधता है, पंच महाव्रत की पच्चीस भावना करे... सब बातें (आती हैं)। यह व्यवहारनय से वहाँ ज्ञान कराया है। वह चीज़ है न! परन्तु है वह बन्ध का कारण। आहाहा! ऐसा आगम-मूल आगम का निश्चय वचन, आगम का परमार्थ उपदेश तो यह है। अन्य उपदेश है, वह सब व्यवहार से जानने के लिए कहा है। आहा! आदरने के लिए आगम का वचन यह है। आहाहा! यह तो बाहर से मर जाए, तब समझ में आये, ऐसा है। कहीं बाहर में रस रहे, देव-गुरु-शास्त्र में रस रहे तो भी राग है और वह राग, बन्ध का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि को महाव्रत सहज होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : होते हैं, तो भी बन्ध का कारण है। सहज होते हैं, इसका अर्थ कि वहाँ कर्ताबुद्धि-करने योग्य है नहीं; इसलिए आते हैं और ज्ञाननय से वह परिणमन है, इसलिए कर्ता है - ऐसा भी कहा जाता है। आहाहा! छठवें (गुणस्थान में) पंच महाव्रतरूप से इतना परिणमता है न! वह प्रमाद है; और परिणमता है; इसलिए उसे कर्ता भी कहा जाता है। परिणमन की अपेक्षा से (कर्ता कहा जाता है), करनेयोग्य है - इस अपेक्षा से नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : बन्ध का कारण बराबर है, परन्तु निषेध किस प्रकार करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : निषेध है - ऐसा कहा न! आगम का वचन (है कि वह) निषेध (करनेयोग्य) है।

मुमुक्षु : उस गुणस्थान में तो आयेगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ भले कहा हो।

मुमुक्षु : उस गुणस्थान में तो आयेगा न!

पूज्य गुरुदेवश्री : गुणस्थान भी आदरनेयोग्य नहीं है। गुणस्थान जीव में है ही नहीं। ६८ गाथा। आहाहा! 'जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह' वहाँ इसका अर्थ यह कि भेद है परन्तु तत्त्व में-अन्दर वस्तु में वह भेद नहीं है। आहाहा! चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ (गुणस्थान) वह तीर्थ। तीर्थ है, अर्थात् उससे यहाँ प्राप्त होता है, यह प्रश्न यहाँ नहीं है। आहाहा! वह अवस्था है, इतना। वह व्यवहार नहीं है, ऐसा नहीं है और उस व्यवहार से भिन्न भगवान तत्त्व निश्चय है, उसमें तो यह गुणस्थान का भेद भी नहीं, मार्गणास्थान का भेद भी नहीं, जीव (स्थान के) भेद भी नहीं। आहाहा! जिसमें क्षायिकभाव नहीं.. आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, वही अन्तर में उपादेयरूप से, आदरणीयरूप से स्वीकाररूप से, सत्काररूप से माननेयोग्य है। आहाहा! क्या हो? जगत् पहुँच नहीं सकता, इसलिए कहीं वस्तु दूसरी हो जाएगी? पहुँच नहीं सके, इसलिए मार्ग कहीं दूसरा होगा, बापू! आहाहा!

यहाँ आचार्य कहते हैं **सामान्यतया रागीपन की निमित्तता के कारण शुभाशुभ दोनों कर्मों को अविशेषतया बन्ध के कारणरूप सिद्ध करता है..** उसमें ऐसा नहीं लेना कि पुण्य / शुभभाव व्रत है, वह ठीक है। सामान्यरूप से जो रागी कहा, उसमें सब आ गया। शुभ और अशुभ दोनों भाव रागीपने में आ गये। **रागीपन की निमित्तता के कारण शुभाशुभ दोनों कर्मों..** अर्थात् पर्याय, दोनों परिणाम। **अविशेषतया..** अर्थात् सामान्यरूप से **बन्ध के कारणरूप..** दोनों समान बन्ध के कारण हैं। आहाहा! **अविशेषतया..** (अर्थात्) शुभभाव में बन्ध में कुछ अन्तर है (और) अशुभ में कुछ अन्तर है, ऐसा नहीं है। अविशेष (अर्थात्) सामान्यरूप से शुभ और अशुभ दोनों कार्य-काम **बन्ध के कारणरूप सिद्ध करता है..** आगम। आहाहा! अब उसमें चर्चा-वार्ता करे। आहाहा! खानिया की बड़ी चर्चा हुई है न! उसके सामने यह रखते हैं, बंशीधरजी! जैनदर्शन में बड़ा चला है, लम्बा.. लम्बा.. लम्बा (लेख आता है)। यहाँ तो पढ़ा भी नहीं। जैनदर्शन (तात्कालिक जैन समाचार पत्रिका) में (ऐसा लिखते हैं कि) खानिया में ऐसा है और वैसा है और वैसा है.. अरे! भगवान! क्या हो? बापू! आहाहा!

यहाँ तो **सामान्यतया रागीपन की निमित्तता के कारण शुभाशुभ दोनों कर्मों को अविशेषतया बन्ध के कारणरूप सिद्ध करता है और इसलिए दोनों कर्मों का निषेध करता है।** लो! आहाहा! चरणानुयोग में उसे करनेयोग्य कहा। कल आया था, नहीं? पंच महाव्रत का! बड़े पुरुष ने आचरण किये हैं, बड़े पुरुष ने किये हैं, वे बड़े हैं। महाव्रत स्वयं बड़े हैं। तीन शब्द रखे थे, तीन थे। आहाहा! उसे उस समय में उसकी दशा में महाव्रत के विकल्प के समय वह दशा है, उस दशासहित के विकल्प हैं, उन्हें यहाँ महाव्रतरूप से, व्यवहाररूप से कहा। निश्चयरूप से तो महाव्रत (अर्थात्) अपने स्वरूप में स्थिर हुआ है, वह महाव्रत है। आहाहा! यह आता है न? नियमसार! ध्यान में सब आता है। यह आता है। नियमसार में एक (जगह आता है)। जो सब क्रियाएँ करे, उसका त्याग करके आत्मा का ध्यान (होना), वह व्रत और तीर्थ और संयम, यह सब वह है। आता है न! आहाहा! ये दोनों कर्म अर्थात् कार्य उनका निषेध करते हैं।

कलश-१०३

इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:-

(स्वागता)

कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद् बन्धसाधनमुशन्त्यविशेषात्।
तेन सर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः।।१०३।।

श्लोकार्थ : [यद्] क्योंकि [सर्वविदः] सर्वज्ञदेव [सर्वम् अपि कर्म] समस्त (शुभाशुभ) कर्म को [अविशेषात्] अविशेषतया [बन्धसाधनम्] बन्ध का साधन (कारण) [उशन्ति] कहते हैं, [तेन] इसलिए (यह सिद्ध हुआ कि उन्होंने) [सर्वम् अपि तत् प्रतिषिद्धं] समस्त कर्म का निषेध किया है और [ज्ञानम् एव शिवहेतुः विहितं] ज्ञान को ही मोक्ष का कारण कहा है।।१०३।।

कलश - १०३ पर प्रवचन

इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:- १०३ (श्लोक)

कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद् बन्धसाधनमुशन्त्यविशेषात्।
तेन सर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः।।१०३।।

आहाहा! **[यद्]** अर्थात् **क्योंकि [सर्वविदः]** अर्थात् **'सर्वज्ञदेव विदः'** अर्थात् ज्ञानी। सर्व जाननेवाले सर्वज्ञदेव परमात्मा ने **[सर्वम् अपि कर्म] समस्त (शुभाशुभ)..** भाव को **अविशेषतया..** (अर्थात्) सामान्यरूप से। दोनों में कुछ भी अन्तर है, ऐसा नहीं। आहाहा! अविशेष अर्थात् सामान्य; विशेष नहीं। सामान्यरूप से **[बन्धसाधनम्] बन्ध का साधन (कारण) कहते हैं..** लो, ठीक! आहा! शुभ और अशुभभाव दोनों बन्ध के साधन हैं। आहाहा! अब जो बन्ध के साधन हैं, वे मोक्ष के साधनरूप से व्यवहार से डाले, यह नहीं चलता। आहाहा!

सर्वज्ञदेव, अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली... आहाहा! इन शुभ और अशुभभाव को सामान्यरूप से दोनों एक ही समान हैं, (ऐसा) मानकर बन्ध का कारण कहते हैं। भगवान त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ऐसा दिव्यध्वनि में फरमाते हैं। आहाहा! **इसलिए (यह सिद्ध हुआ कि उन्होंने) [सर्वम् अपि तत् प्रतिषिद्धं] समस्त कर्म का निषेध किया है..** आहाहा! और शुभाशुभ दोनों भाव का जिनेश्वरदेव ने निषेध किया है। दोनों धर्म नहीं है। आहाहा! तब है क्या?

[ज्ञानम् एव शिवहेतुः विहितं] आहाहा! भगवान सर्वज्ञदेवों ने ज्ञान अर्थात् आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वरूप प्रभु, आहाहा! अकेला पुण्य-पापरहित प्रभु शुद्ध, शुद्ध—ऐसे ज्ञान को ही मोक्ष का कारण फरमाया है। अकेला ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, जो दया-दान के विकल्प से भिन्न है, वह ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उस ज्ञान को मोक्ष का कारण कहा है। आगम में यह कहा है। चारों अनुयोग लो। आगम में तो यह आ गया या नहीं? या वे तीन आगम नहीं? चरणानुयोग में ऐसा कहा है और करणानुयोग में ऐसा कहा है। सब कहा है। आहाहा!

भगवान के आगम में तो समस्त कार्य का निषेध है। **'ज्ञानम् एव'** शब्द है। देखा?

एकान्त किया! ज्ञान को ही। कथंचित् आत्मा के स्वभाव को और कथंचित् राग के भाव को मोक्ष का कारण (कहा है, ऐसा नहीं)। ऐसा कथंचित् (शब्द का अर्थ) नहीं है। आहाहा! **'ज्ञानम् एव'** भगवान आत्मा शुभ-अशुभभावरहित, ऐसा जो चैतन्यस्वरूप, महान ध्रुव नित्य आत्मस्वरूप; पुण्य-पाप तो क्षणिक, कृत्रिम, विकार, दुःखरूप एक समयमात्र का विभाव है और यह भगवान ज्ञानस्वभावी त्रिकाल है। उस त्रिकाली ज्ञानस्वभाव को ही मोक्ष के साधनरूप से प्रभु ने वर्णन किया है। आहाहा!

उसमें तो भगवान की भक्ति को भी मोक्ष के साधनरूप से निषेध किया है। देव, गुरु और शास्त्र की भक्ति, वह भी राग में-सामान्यराग में आ जाती है। राग कहा, राग से बँधता है, वह सामान्यराग में यह बात आ जाती है। आहाहा! भारी कठिन काम। भक्तिवालों को कठोर पड़े, क्रियाकाण्डवालों को कठोर (पड़े) और न कर सके, उसे कठोर पड़े। कर नहीं सकता, इसलिए (ऐसा होता है कि).. यह क्या!

मुमुक्षु : कर नहीं सकता फिर किस प्रकार करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर सकता है, हाँ। उसके ज्ञान में पहले निर्धार तो निर्णय करे कि शुभाशुभभाव बन्ध के ही कारण हैं और ज्ञानस्वरूप भगवान, जो शुभ-अशुभभाव से रहित त्रिकाल है, वीतरागमूर्ति है, जिनस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है, ईश्वरस्वरूप है, उसे उसका साधन करे, उसे मोक्ष होता है। आहाहा! ऐसा है।

ज्ञान को ही... ऐसा कहा है न! **'ज्ञानम् एव'** वहाँ ऐसा नहीं कहा कि आत्मा का स्वभाव साधन है और राग भी कथंचित् साधन में कहते हैं। यह सैंतालीस नय में आता है न! व्यवहारनय-निश्चयनय, क्रियानय-ज्ञाननय दोनों आते हैं। लो! सैंतालीस नय में तो क्रियानय को डाला है। वह तो एक समय की योग्यता सब उस प्रकार की गिनी है। किसी को क्रियानय और किसी को ज्ञाननय; किसी को व्यवहारनय और किसी को निश्चयनय-ऐसा नहीं है। आहाहा! सैंतालीस नय में (आता है न)! वह तो एक के एक जीव को, जिसकी दृष्टि स्वभाव पर पड़ी है, उसकी पर्याय में ऐसे एक-एक नय के भावों की योग्यता गिनकर कहने में आया है। वे एक साथ हैं। किसी को क्रियानय से और किसी को ज्ञाननय से, किसी को व्यवहार से और किसी को निश्चय से (होता है), ऐसा नहीं है। आहाहा!

ऐसा मार्ग है, कठिन मार्ग है। एक तो सुनने को मिलता नहीं.. आहाहा! और इस दुनिया की पंचायत का पार नहीं होता। धन्धा-पानी पाप का करे और उसमें निवृत्त होवे तो सुनने को मिले (कि) व्रत करो और तप करो और भक्ति करो.. यह मिले बेचारे को। उसका घण्टा (भर समय) लुट जाता है। आहाहा! ऐसा मनुष्य देह मिला, उसमे तूने क्या किया? भाई! आहाहा! मनुष्य देह तो चला जाएगा, बापू! आहा! उसका क्षण और पल निश्चित है। जो समय है, उस समय में देह छूटकर चला जाएगा। आहा! तेरा तूने क्या किया? प्रभु! आहाहा! बाहर में नाम निकाला कि यह पाँच-पचास हजार और लाख, दो लाख, पाँच लाख, पच्चीस लाख इकट्ठे किये, परिवार में सामने पड़ा। (वह तो) पापी प्राणी में सामने पड़ा पापी। आहाहा! कर्मी.. कर्मी.. कर्मी नहीं कहते? हमारा लड़का कर्मी जगा है। कर्मी जगा है न? (उसका अर्थ) पापी जगा है। आहाहा! आहाहा!

भगवान जिनेश्वरदेव ने तो आत्मा का जो स्वभाव शुद्ध चैतन्यघन है, उसका आश्रय लेकर मोक्ष का साधन हो, ऐसा कहा है। आहाहा! अनन्त तीर्थंकर, अनन्त हो गये, वर्तमान प्रभु विराजते हैं-महाविदेह में बीस तीर्थंकर, लाखों केवली विराजते हैं, प्रभु! अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली हो गये हैं, हैं और होंगे, (उन) सब तीर्थंकरों के उपदेश की यह ध्वनि है। आहाहा! अरे कैसे जँचे? वाड़ा में-सम्प्रदाय में पकड़ा गया हो, (उसे यह नहीं जँचता)। उसके गुरु उसे कहते हों, यह व्रत करो, यह तप करो, यह अपवास करो, यह करो, यह करो.. छह परबी कन्दमूल नहीं खाना, छह परबी ब्रह्मचर्य पालन करना, वह धर्म नहीं? धूल में भी नहीं, सुन न! धूल में नहीं अर्थात्?—कि वहाँ पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं है। आहाहा! ऐसा काम कठिन पड़े बेचारे को। यह तो सोनगढ़ और जंगल! इसमें किसी का वाड़ा नहीं कि वाड़ा में रहे। ऐसी बात (करे तो) वाड़ा में रहने न दे। आहाहा!

प्रभु! तेरा हित कैसे हो? बापू! ऐसा मनुष्य देह मिला। अनन्त काल में मुश्किल से मनुष्य देह (मिला), उसमें भी आर्यकुल—जैनकुल में अवतार। भले नाम जैन (होवे), प्रभु! उसमें वीतराग की वाणी तुझे सुनने को मिले! आहाहा! ऐसी दुर्लभता में यह बात यदि नहीं समझा, प्रभु! आहा! भाई! तेरा अवसर कहाँ आयेगा? ऐसा अवसर चूककर बापू! यह अनन्त भव के गर्भ में अनन्त भव का दुःख है, भाई! उसमें भटकन में अनजाने क्षेत्र में, अनजाने काल में जाकर अवतरित होगा। आहाहा! उसमें इसे इसमें के कोई साथ में नहीं आयेंगे। आहाहा!

अनन्त तीर्थंकर..! यहाँ वजन क्यों देना है? **(ज्ञानम् एव शिवहेतुः विहितं)** आगम में, वीतराग का आगम उसे कहते हैं कि जिस आगम में.. आहाहा! आत्मा का ज्ञान, आत्मा का दर्शन, आत्मा का चारित्र, आत्मा के आश्रय से होनेवाली वीतरागीदशा, वह ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है, वही एक मोक्ष का साधन है - ऐसा अनन्त तीर्थंकरों ने दिव्यध्वनि में यह वचन कहे हैं, प्रभु! तुझे कैसे (जँचे)? आहाहा! **ज्ञान को ही मोक्ष का कारण कहा है।** यहाँ वजन इतना है। कथंचित् व्यवहार और कथंचित् आत्मा के स्वभाव को (साधन कहा है, ऐसा नहीं) तथा उस ज्ञान का आत्मस्वभाव, यह व्यवहार पहले आवे तो उससे होगा, यह बात यहाँ तो की नहीं है। आहाहा!

भगवान ज्ञान की मूर्ति प्रभु चैतन्यघन आत्मा, ज्ञायकभाव, नित्यभाव, ध्रुवभाव, अभेदभाव, एकभाव, सामान्यभाव, सदृशभाव, भूतार्थभाव.. आहाहा! उसके आश्रय से जो साधन हो, उसे मोक्ष का साधन कहा है। आहाहा! बाकी बीच में सब मन्दिर और यह धूमधाम और यह सब हा.. हो.. हा.., उसमें कुछ भी मोक्ष का कारण है, ऐसा नहीं है, कहते हैं। यह बड़ा बाईस लाख का मन्दिर (बनाया), यह क्या है? आहाहा! इसका प्रेम और भक्ति हो तो शुभभाव है। शुभभाव, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा!

तीन शब्द हैं **(ज्ञानम् एव शिवहेतुः विहितं)** फरमाया है। अनन्त तीर्थंकरों ने आत्मा के ज्ञानस्वभाव में जाना, वहाँ स्थिर होना, वहाँ रहना, वहाँ दृष्टि करना.. आहाहा! उसे अनन्त सर्वज्ञों ने मोक्ष का कारण फरमाया है। आहाहा! थोड़ा लिखा बहुत जानना, ऐसा लिखा है। आहाहा! ऐसा थोड़ा कहा, बहुत मानना। आहाहा! आहाहा!

पहले इसके ज्ञान में निर्णय तो करे, प्रभु! कि यह आत्मा जो त्रिकाल स्वभाव है, वह शुभ-अशुभ क्रियाकाण्ड के राग से तो वह भिन्न चीज़ है। भिन्न चीज़ को भिन्न राग से लाभ हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा!

ज्ञान को ही मोक्ष का कारण.. ओहो! इतने शब्दों में तो कितना भरा है!! आहाहा! आत्मस्वभाव शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, उसे ही। व्यवहार भी बीच में आवे, इसलिए साधन है, ऐसा नहीं है। उसे (ज्ञान को) मोक्ष का कारण, परमात्म (पद की) प्राप्ति का कारण अनन्त तीर्थंकरों ने **कहा है।** आहा! है न? **विहितं** यह **विहितं** आहाहा! अनन्त सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसी **विहितं** यह विधि कही है। कहा है, यह फरमान है। आहाहा! अब उसमें चर्चा और वार्ता और... आहाहा!

जबकि समस्त कर्मों का निषेध कर दिया गया, तब फिर मुनियों को किसकी शरण रही... आप कहते हो कि व्रत, तप और भक्ति बेचारा पूरे दिन करे तो समय तो मिले, आधार तो मिले। उसका तो तुमने निषेध किया। अब उन्हें शरण किसका? अहिंसा, सत्य, अचौर्य व्रत पालना, ब्रह्मचर्य पालना, स्त्री का संसर्ग करना नहीं, नौ वाड से ब्रह्मचर्य पालना, ऐसा कुछ उसे करने का तो आवे। आहाहा! जब तुमने ऐसे भाव का तो निषेध किया, तब मुनि किसकी शरण में मुनिपना पालेंगे? ऐसे व्रतादि, तपादि भाव को तो तुमने संसार और बन्ध का कारण कहा। मूल पाठ में संसार कहा है। राग अर्थात् संसार – ऐसा शब्द है। राग, वह संसार। चाहे तो दया, दान, व्रत, तप का राग / विकल्प हो परन्तु (वह) संसार है। आहाहा! जब तुमने उसका निषेध किया, तब उन्हें शरण क्या? करने का जो था, जो आचरण में रखने का था, जो किया जा सके ऐसा था, जो वैसे किया जा सकता है, अब उसका तो तुमने निषेध किया। आहाहा! तब अब उन्हें करना क्या? उन्हें रहा क्या? जो करने की क्रियाएँ (थीं) व्रत और नियम अपवास और भक्ति और विनय का तो तुमने निषेध किया। तो अब उन्हें करने का क्या रहा? आहा! ऐसा शिष्य का प्रश्न है। **सो अब कहते हैं:–**

कलश–१०४

जबकि समस्त कर्मों का निषेध कर दिया गया, तब फिर मुनियों को किसकी शरण रही, सो अब कहते हैं:–

(शिखरिणी)

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल,
प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः सन्त्यशरणाः।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरित–मेषां हि शरणं,
स्वयं विन्दन्त्येते परम–ममृतं तत्र निरताः।।१०४।।

श्लोकार्थ : [सुकृतदुरिते सर्वस्मिन् कर्मणि किल निषिद्धे] शुभ आचरणरूप कर्म

और अशुभ आचरणरूप कर्म – ऐसे समस्त कर्मों का निषेध कर देने पर [नैष्कर्म्ये प्रवृत्ते] निष्कर्म (निवृत्ति) अवस्था में प्रवर्तमान; [मुनयः खलु अशरणाः न सन्ति] मुनिजन कहीं अशरण नहीं हैं; [तदा] (क्योंकि) जब निष्कर्म अवस्था प्रवर्तमान होती है, तब [ज्ञाने प्रतिचरितम् ज्ञानं हि] ज्ञान में आचरण करता हुआ–रमण करता हुआ–परिणमन करता हुआ ज्ञान ही [एषां] उन मुनियों को [शरणं] शरण है; [एते] वे [तत्र निरताः] उस ज्ञान में लीन होते हुए [परमम् अमृतं] परम अमृत का [स्वयं] स्वयं [विन्दन्ति] अनुभव करते हैं–स्वाद लेते हैं।

भावार्थ : किसी को यह शंका हो सकती है कि – जब सुकृत और दुष्कृत – दोनों को निषेध कर दिया गया है, तब फिर मुनियों को कुछ भी करना शेष नहीं रहता, इसलिए वे किसके आश्रय से या किस आलम्बन के द्वारा मुनित्व का पालन कर सकेंगे? आचार्यदेव ने उसके समाधानार्थ कहा है कि – समस्त कर्मों का त्याग हो जाने पर ज्ञान का महा शरण है। उस ज्ञान में लीन होने पर सर्व आकुलता से रहित परमानन्द का भोग होता है–जिसके स्वाद को ज्ञानी ही जानते हैं। अज्ञानी कषायी जीव कर्मों को ही सर्वस्व जानकर उन्हीं में लीन हो रहे हैं, वे ज्ञानानन्द के स्वाद को नहीं जानते।।१०४।।

श्लोक - १०४ पर प्रवचन

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल,
प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः सन्त्यशरणाः।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरित–मेषां हि शरणं,
स्वयं विन्दन्त्येते परम–ममृतं तत्र निरताः।।१०४।।

आहाहा! **[सुकृतदुरिते सर्वस्मिन् कर्मणि किल निषिद्धे]** प्रभु! **शुभ आचरणरूप..** देखा? शुभ आचरण (कहा है)। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, उपवास यह **शुभ आचरणरूप कर्म..** अर्थात् भाव–कार्य **और अशुभ आचरणरूप कर्म..** हिंसा, झूठ, चोरी, विषय यह दुकान का धन्धा–पानी, दुकान की गद्दी पर बाईस घण्टे बैठे न! बाईस घण्टे तो (न बैठे), छह–सात घण्टे सोये न! दो–चार घण्टे खाने–पीने में, स्त्री, पुत्र प्रसन्न करने में जाए, दुकान में छह–सात घण्टे बैठे। दस–दस घण्टे बैठे।

हमारे दुकान थी न! हमारे कुँवरजीभाई सवेरे उठें वे... छह बजे से रात के नौ बजे तक! हमारे पालेज में दुकान (थी)। कहा, तुम यह क्या करते हो? पूरे दिन यह! यह तो अकेला पाप है। ऐ.. बहिन आओ, ऐ.. भाई आओ, यह माल लो, अमुक लो, अमुक लो, ऐसा है, वैसा है... इसके दो रुपया हैं, तो वह कहे हमारे पास इतने नहीं हैं। तो कहे, दो आने कम देना, लो न! तुम्हारी जिन्दगी इसमें जाती है, यह क्या है? कहा यह। दुकान का धन्धा, स्त्री-पुत्र को प्रसन्न करने में, छह-सात घण्टे नींद में (जाते हैं).. अरे रे! उसे घण्टे-दो घण्टे समय मिले (और) सुनने में जाए तो (सुनने में) ऐसा मिले वापस! व्रत करो, तप करो, उससे तुम्हारा कल्याण होगा। अरे प्रभु! तब अब इसे करना क्या? आहाहा!

जो कुछ किया जा सके, दिखता है, दूसरों को दिखता है, उस बात का तो तुम निषेध करते हो। आहाहा! तब मुनि को क्या करना? परन्तु प्रभु! तुझे खबर नहीं, सुन! आहाहा! **और.. [नैष्कर्म्ये प्रवृत्ते] निष्कर्म (निवृत्ति) अवस्था में प्रवर्तमान;..** आहाहा! यह शुभ-अशुभ जो कर्म अर्थात् भाव, उनसे रहित निष्कर्म अवस्था। अन्य कर्म अवस्था है। आहाहा! शुभ-अशुभभाव वह कर्म विकार, संसार अवस्था है। उससे **निष्कर्म (निवृत्ति) अवस्था में प्रवर्तमान;..** आहाहा! मुनि उसे कहते हैं कि उस शुभ-अशुभभाव से निवृत्ति होकर **निष्कर्म (निवृत्ति) अवस्था में प्रवर्तमान;... [मुनयः खलु अशरणाः न सन्ति] मुनिजन कहीं अशरण नहीं हैं;..** कुछ अन्दर करने का नहीं है, ऐसा नहीं है। आहाहा! शुभाशुभभाव से रहित हुआ, निष्कर्म अवस्था में प्रवर्तता है, वह कुछ करने का नहीं है, ऐसा नहीं है। यह निष्कर्म आत्मभगवान अन्दर निष्कर्म अवस्था में प्रवर्तता है। आहाहा!

शुद्धज्ञानघन भगवान आत्मा इन शुभ-अशुभभावरहित निष्कर्म दशा में प्रवर्तता है। प्रभु! आहाहा! है न? **[नैष्कर्म्ये प्रवृत्ते] निष्कर्म (निवृत्ति) अवस्था में प्रवर्तमान;..** आहाहा! **[मुनयः खलु अशरणाः न सन्ति] मुनिजन कहीं अशरण नहीं हैं;..** आहाहा! **(क्योंकि) जब निष्कर्म (निवृत्ति) अवस्था प्रवर्तमान होती है..** आहाहा! जब इस शुभभाव से भी निवृत्ति(रूप) ऐसी अवस्था सन्तों, सच्चे मुनियों को प्रवर्तमान है.. आहाहा! वह शुभभाव कर्म है, विकार है, कार्य है, उससे निवृत्तिरूप निष्कर्म अवस्था (में अर्थात् कि) स्वभाव सन्मुख में (प्रवर्तमान है)। आहाहा! **जब निष्कर्म अवस्था प्रवर्तमान होती है तब..**

[ज्ञाने प्रतिचरितम् ज्ञानं हि] आहाहा! **ज्ञान में आचरण करता हुआ-रमण करता हुआ-परिणमन करता हुआ ज्ञान ही..** आहाहा! आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप प्रभु, वह आनन्द और ज्ञान में रमता हुआ.. आहाहा! वह निष्कर्म अवस्था, वह इसे करनेयोग्य शरण है। शुभाशुभ छूट गया, इसलिए इसे कुछ करने का नहीं रहा, ऐसा नहीं है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अन्दर आनन्द का सागर, अतीन्द्रिय अनन्त गुण की रत्न की माला भरी है! आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा में एकाग्रता, वह निष्कर्म अवस्था, वह मुनियों को शरण है। आहाहा! अब यहाँ तो बाहर के व्रत पालन किये और यह किये... (उसका) भी ठिकाना कहाँ है? आहाहा!

निष्कर्म अवस्था प्रवर्तमान होती है, तब **[ज्ञाने प्रतिचरितम् ज्ञानं]** आहाहा! आत्मा, आत्मा में आचरण करता हुआ। यहाँ 'ज्ञान' शब्द लिया है अर्थात् आत्मा। पुण्य-पाप के भाव, वे कहीं आत्मा नहीं है; वे तो अनात्मा है। आहाहा! **ज्ञान में आचरण करता हुआ..** भगवान शुद्धस्वरूप पर दृष्टि पड़ने से शुद्धस्वभाव का अवलम्बन लेने से ज्ञान में अर्थात् आत्मा में आचरण करता हुआ, आत्मा में **रमण करता हुआ..** आत्मा में **परिणमन करता हुआ..** आहाहा! वह **ज्ञान ही उन मुनियों को शरण है;..** आहाहा! ऐसा मार्ग! अन्तर आत्मा में ध्यान में प्रवर्तते हैं, वही उन्हें शरण है। राग और पुण्य-पाप के परिणाम छोड़कर,.. सन्त-जैन के सन्त उन्हें कहते हैं। आहाहा!

जैन कोई पक्ष नहीं, वाड़ा नहीं। जैन तो वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! जैन कोई पक्ष-वाड़ा नहीं है। वह तो वस्तु जिनस्वरूप है। 'घट घट अन्तर जिन बसै' वह जिनस्वरूपी प्रभु भगवान आत्मा है, बापू! तुझे खबर नहीं है। आहाहा! यह पुण्य और पाप के भाव के त्याग में, उसे जिनस्वरूप ऐसा वीतराग (स्वरूप) का आश्रय लेकर निष्कर्म अवस्था में प्रवर्तता है। आहाहा! अरे रे! ऐसा कठिन! ऐसा सुना भी न हो। अकेले पाप में जिन्दगी (व्यतीत करे)। आहाहा! अरे रे.. पशु के जीवन और मनुष्य के जीवन में अन्तर क्या? वह भी खावे-पीवे, मैथुन और विषय और सोवे, यह भी वह का वही (करे), उसमें अन्तर क्या? बापू!

यहाँ तो जब शुभ व्रतादि के परिणाम का निषेध किया, प्रभु! तब इसे अब आचरना क्या? आचरण जो है, दिखता है, किया जा सकता है, उसका तो तुमने निषेध किया कि

यह तो राग है। आहाहा! यह बन्ध का कारण है। प्रभु! तेरा नाथ अन्दर विराजता है या नहीं? भाई! इन पुण्य-पाप का निषेध हुआ, इसलिए तेरी वस्तु का वहाँ निषेध हुआ? आहाहा! शुभ-अशुभभाव का निषेध होने से, प्रभु अन्दर ज्ञानघन, आनन्दघन, चिदानन्द प्रभु विराजता है। आहाहा! वह शुभाशुभभाव से निवर्तता है, तब शुद्धस्वभाव में प्रवर्तता है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान में आचरण करता हुआ.. 'प्रतिचरितम्' है न? **'ज्ञाने प्रतिचरितम्'** ज्ञान में आचरण, ऐसा। **ज्ञान में आचरण करता हुआ...** यह **'प्रतिचरितम्'** का अर्थ किया। वापस यह **रमण करता हुआ...** इसका अर्थ (भी यह है) अथवा **परिणमन करता हुआ..** यह **'प्रतिचरितम्'** का अर्थ है। **'ज्ञाने प्रतिचरितम् ज्ञानं हि एषां' उन मुनियों को-सन्तों को शरण है;..** आहाहा! **वे उस ज्ञान में लीन होते हुए..** आहाहा! सन्त तो उन्हें कहते हैं कि जो आनन्द और यह ज्ञानस्वरूप प्रभु, उसमें लीन होते हुए। आहाहा! शुभाशुभपरिणाम के क्रियाकाण्ड में से छूटकर.. आहाहा! **ज्ञान में...** अर्थात् आत्मा के शुद्धस्वभाव में। **लीन होते हुए..** क्या कहा, देखा?

[तत्र निरता:] अपने पुरुषार्थ से ज्ञान में लीन होते हुए। स्वरूप जो आत्मा है, ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, उसमें लीन होने पर। आहाहा! अनित्य और कृत्रिम, शुभाशुभभाव से छूटे, इसलिए कोई शरण नहीं हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! उन्हें भगवान आत्मा का शरण है। **ज्ञान में लीन होते हुए.. [परमम् अमृतं]** यह शुभ-अशुभभाव तो जहर था। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के परिणाम तो जहर थे। आहाहा! वहाँ से छूटा, वह **परम अमृत का स्वयं अनुभव करते हैं..** आहाहा! अमृत को **स्वाद लेते हैं।** अन्दर अमृतघन है, प्रभु! आनन्द का नाथ परमात्मा स्वयं है! आहाहा! ऐसे अमृत को (अनुभव करते हैं)। **[परमम् अमृतं]** वापस। दुनिया के बाहर के अमृत बहुत कहलाते हों। आहाहा!

परम अमृत का.. [स्वयं] स्वयं.. स्वयं, स्वयं (अर्थात्) पर की अपेक्षा बिना। **[विन्दन्ति]** अर्थात् **अनुभव करते हैं..** वह उन्हें शरण है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)